श्री दुर्गा सप्तशती अध्याय

॥श्रीदुर्गायै नमः॥
अथ श्री दुर्गासप्तशती
* * * * * * * * * * * * *
प्रथमोऽध्यायः
* * * * * * * * * * * * *
मेधा ऋषिका राजा सुरथ और समाधि को
भगवती की महिमा बताते हुए मधु-कैटभ-वध का प्रसंग सुनाना।
* * * * * * * * * * * * *

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः,
नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्,
ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्रजपे विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥१॥
ॐ नमश्चण्डिकायै*

ॐ – प्रथम चरित्रके ब्रह्मा ऋषि, महाकाली देवता, गायत्री छन्द, नन्दा शक्ति, रक्तदन्तिका बीज, अग्नि तत्त्व और ऋग्वेद स्वरूप है। श्रीमहाकाली देवताकी प्रसत्रताके लिये प्रथम चरित्रके जपमें विनियोग किया जाता है ।

भगवान् विष्णुके सो जानेपर मधु और कैटभको मारनेके लिये कमलजन्मा ब्रह्माजीने जिनका स्तवन किया था, उन महाकाली देवीका मैं ध्यान करता (करती) हूँ । वे अपने दस हाथोंमें खड़ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, मस्तक और शङ्ख धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे समस्त अंगो मे दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके शरीरकी कान्ति नीलमणिके समान है तथा वे दस मुख और दस पैरोंसे युक्त हैं। ॐ चण्डीदेवीको नमस्कार है।

“ॐ ऐं” मार्कण्डेय उवाच॥१॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम॥२॥

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः॥३॥

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले॥४॥

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा॥५॥

तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः॥६॥

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः॥७॥

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः॥८॥

ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्॥९॥

स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम्॥१०॥

तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे॥११॥

मार्कण्डेय जी बोले – ॥१॥ सूर्य के पुत्र सावर्णि जो आठवें मनु कहे जाते हैं, उनकी उत्पत्ति की कथा विस्तार पूर्वक कहता हूँ, सुनो ॥२॥ सूर्यकुमार महाभाग सवर्णि भगवती महामाया के अनुग्रह से जिस प्रकार मन्वन्तर के स्वामी हुए, वही प्रसंग सुनाता हूँ ॥३॥ पूर्वकाल की बात है,स्वारोचिष मन्वन्तर में सुरथ नाम के एक राजा थे, जो चैत्र वंश में उत्पन्न हुए थे। उनका समस्त भूमण्डल पर अधिकार था ॥४॥ वे प्रजा का अपने पुत्रों की भाँति धर्मपूर्वक पालन करते थे। फिर भी उस समय कोलाविध्वंसी नाम के क्षत्रिय उनके शत्रु हो गये ॥५॥ राजा सुरथ की दण्डनीति बड़ी प्रबल थी। उनका शत्रुओं के साथ संग्राम हुआ। यद्यपि कोलाविध्वंसी संख्या में कम थे, तो भी राजा सुरथ युद्ध में उनसे परास्त हो गये ॥६॥ तब वे युद्ध भूमि से अपने नगर को लौट आये और केवल अपने देश के राजा होकर रहने लगे (समूची पृथ्वी से अब उनका अधिकार जाता रहा) किंतु वहाँ भी उन प्रबल शत्रुओं ने उस समय महाभाग राजा सुरथ पर आक्रमण कर दिया ॥७॥ राजा का बल क्षीण हो चला था, इसलिये उनके दुष्ट, बलवान एवं दुरात्मा मंत्रियों ने वहाँ उनकी राजधानी में भी राजकीय सेना और खजाने को वहाँ से हथिया लिया ॥८॥ सुरथ का प्रभुत्व नष्ट हो चुका था, इसलिये वे शिकार खेलने के बहाने घोड़े पर सवार हो वहाँ से अकेले ही एक घने जंगल में चले गये ॥९॥ वहाँ उन्होंने विप्रवर मेधा मुनि का आश्रम देखा, जहाँ कितने ही हिसंक जीव (अपनी स्वाभाविक हिंसावृत्ति छोड़कर) परम शान्त भाव से रहते थे ॥१०॥ मुनि के बहुत से शिष्य उस वन की शोभा बढ़ा रहे थे। वहां जाने पर मुनि ने उनका सत्कार किया और वे उन मुनि श्रेष्ठ के आश्रम पर इधर-उधर विचरते हुए कुछ काल तक वहां रहे ॥११॥

सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः*।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत्॥१२॥

मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः॥१३॥

मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः॥१४॥

अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम्।
असम्यग्व्यशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम्॥१५॥

संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः॥१६॥

तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः॥१७॥

सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम्॥१८॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम्॥१९॥

फिर ममता से आकृष्टचित्त होकर उस आश्रम में इस प्रकार चिंता करने लगे – पूर्वकाल में मेरे पूर्वजों ने जिसका पालन किया था, वहीं नगर आज मुझसे रहित है। पता नहीं, मेरे दुराचारी भृत्यगण उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करते हैं या नहीं। जो सदा मद की वर्षा करने वाला और शूरवीर था, वह मेरा प्रधान हाथी अब शत्रुओं के अधीन होकर न जाने किन भोगों को भोगता होगा? जो लोग मेरी कृपा, धन और भोजन पाने से सदा मेरे पीछे-पीछे चलते थे, वे निश्चय ही अब दूसरे राजाओं को अनुसरण करते होंगे। उन अपव्ययी लोगों के द्वारा खर्च होते रहने के कारण अत्यन्त कष्ट से जमा किया हुआ मेरा वह खजाना भी खाली हो जायेगा। ये तथा और भी कई बातें राजा सुरथ निरंतर सोचते रहते थे।एक दिन उन्होंने वहाँ विप्रवर मेधा के आश्रम के निकट एक वैश्य को देखा और उससे पूछा – भाई, तुम कौन हो? यहां तुम्हारे आने का क्या कारण है? तुम क्यों शोकग्रस्त और अनमने से दिखायी देते हो? राजा सुरथ का यह प्रेम पूर्वक कहा हुआ वचन सुनकर वैश्य ने विनीत भाव से उन्हें प्रणाम करके कहा – ॥१२-१९॥

वैश्य उवाच॥२०॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले॥२१॥

पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम्॥२२॥

वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम्॥२३॥

प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम्॥२४॥
कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः॥२५॥

वैश्य बोला – ॥२०॥ राजन् ! मैं धनियों के कुल में उत्पन्न एक वैश्य हूँ। मेरा नाम समाधि है ॥२१ ॥ मेरे दुष्ट स्त्री-पुत्रों ने धन के लोभ से मुझे घर से बाहर निकाल दिया है। मैं इस समय धन, स्त्री और पुत्र से वंचित हूँ। मेरे विश्वसनीय बंधुओं ने मेरा ही धन लेकर मुझे दूर कर दिया है, इसलिये दुखी होकर मैं वन में चला आया हँ। यहाँ रहकर मैं इस बात को नहीं जानता कि मेरे पुत्रों की, स्त्री की और स्वजनों का कुशल है या नहीं। इस समय घर में वे कुशल से रहते हैं, अथवा उन्हें कोई कष्ट है ? ॥२२-२४ ॥ वे मेरे पुत्र कैसे हैं? क्या वे सदाचारी हैं अथवा दुराचारी हो गये हैं ? ॥२५॥

राजोवाच॥२६॥

यैर्निरस्तो भवाल्लुब्धैः पुत्रदाराादिभिर्धनैः॥२७॥
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम्॥२८॥

राजा ने पूछा – ॥२६॥ जिन लोभी स्त्री-पुत्र आदि ने धन के कारण तुम्हें घर से निकाल दिया, उनके प्रति तुम्हारे चित्त में इतना स्नेह क्यों है? ॥२७-२८॥

वैश्य उवाच॥२९॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः॥३०॥
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः।
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः॥३१॥

पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते॥३२॥

यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते॥३३॥
करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम्॥३४॥

वैश्य बाला – ॥२९॥ आप मेरे विषय में जो बात कहते हैं, वह सब ठीक है ॥३०॥ किंतु क्या करूँ, मेरा मन निष्ठुरता नहीं धारण करता। जिन्होंने धन के लोभ में पड़कर पिता के प्रति स्नेह, पति के प्रति प्रेम तथा आत्मीयजन के प्रति अनुराग को तिलांजलि दे मुझे घर से निकाल दिया है, उन्हीं के प्रति मेरे हृदय में इतना स्नेह है। महामते, गुणहीन बन्धुओं के प्रति भी जो मेरा चित्त इस प्रकार प्रेम मग्न हो रहा है, यह क्या है – इस बात को मैं जानकर भी नहीं जान पाता। उनके लिये मैं लंबी साँसें ले रहा हूँ और मेरा हृदय अत्यन्त दु:खित हो रहा है ॥३१-३३॥ उन लोगों में प्रेम का सर्वथा अभाव है, तो भी उनके प्रति जो मेरा मन निष्ठुर नहीं हो पाता, इसके लिये क्या करूँ ॥३४॥

मार्कण्डेय उवाच॥३५॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ॥३६॥
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम्॥३७॥
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ॥३८॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं – ॥३५॥ तदन्तर राजाओं में श्रेष्ठ सुरथ और वह समाधि नामक वैश्य दोनों साथ-साथ मेधा मुनि की सेवा में उपस्थित हुए और उनके साथ यथायोग्य न्यायानुकूल विनयपूर्ण बर्ताव करके बैठे। तत्पश्चात वैश्य और राजा ने कुछ वार्तालाप आरंभ किया।॥३६-३८॥

राजोवाच॥३९॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत्॥४०॥

दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि॥४१॥

जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम।
अयं च निकृतः* पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः॥४२॥

स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ॥४३॥

दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ।
तत्किमेतन्महाभाग* यन्मोहो ज्ञानिनोरपि॥४४॥
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता॥४५॥

राजा ने कहा – ॥३९॥ भगवन् मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ, उसे बताइये ॥४०॥ मेरा चित्त अपने अधीन न होने के कारण वह बात मेरे मन को बहुत दु:ख देती है। मुनिश्रेष्ठ जो राज्य मेरे हाथ से चला गया है, उसमें और उसके सम्पूर्ण अंगों में मेरी ममता बनी हुई है ॥४१॥ यह जानते हुए भी कि वह अब मेरा नहीं है, अज्ञानी की भाँति मुझे उसके लिये दु:ख होता है, यह क्या है ? इधर यह वैश्य भी घर से अपमानित होकर आया है। इसके पुत्र, स्त्री और भृत्यों ने इसको छोड़ दिया है ॥४२॥ स्वजनों ने भी इसका परित्याग कर दिया है, तो भी इसके हृदय में उनके प्रति अत्यन्त स्नेह है। इस प्रकार यह तथा मैं दोनों ही बहुत दुखी हैं ॥४३॥ जिसमें प्रत्यक्ष दोष देखा गया है, उस विषय के लिये भी हमारे मन में ममता जनित आकर्षण पैदा हो रहा है। महाभाग हम दोनों समझदार है,तो भी हममें जो मोह पैदा हुआ है, यह क्या है ? विवेकशून्य पुरुष की भाँति मुझमें और इसमें भी यह मूढ़ता प्रत्यक्ष दिखायी देती है ॥४४-४५॥

ऋषिरुवाच॥४६॥

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे॥४७॥
विषयश्च* महाभागयाति* चैवं पृथक् पृथक्।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे॥४८॥

केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं* तु ते न हि केवलम्॥४९॥

यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम्॥५०॥

मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु॥५१॥

कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति॥५२॥

लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेता*न् किं न पश्यसि।
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः॥५३॥

महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा*।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः॥५४॥

महामाया हरेश्चैषा* तया सम्मोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥५५॥

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्॥५६॥

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी॥५७॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥५८॥

ऋषि बोले – ॥४६॥ महाभाग, विषय मार्ग का ज्ञान सब जीवों को है ॥४७॥ इसी प्रकार विषय भी सबके लिये अलग-अलग हैं। कुछ प्राणी दिन में नहीं देखते, और दूसरे रात में ही नहीं देखते ॥४८॥ तथा कुछ जीव ऐसे हैं, जो दिन और रात्रि में भी बराबर ही देखते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य समझदार होते हैं, किंतु केवल वे ही ऐसे नहीं होते ॥४९॥ पशु-पक्षी और मृग आदि सभी प्राणी समझदार होते हैं। मनुष्यों की समझ भी वैसी ही होती है, जैसी उन मृग और पक्षियों की होती है ॥५०॥ तथा जैसी मनुष्यों की होती है, वैसी ही उन मृग-पक्षी आदि की होती है। यह तथा अन्य बातें भी प्राय: दोनों में समान ही हैं । समझ होने पर भी इन पक्षियों को तो देखो, यह स्वयं भूख से पीड़ित होते हुए भी मोहवश बच्चों की चोंच में कितने चाव से अन्न के दाने डाल रहे हैं। नरश्रेष्ठ, क्या तुम नहीं देखते कि ये मनुष्य समझदार होते हुए भी लोभवश अपने किये हुए उपकार का बदला पाने के लिये पुत्रों की अभिलाषा करते हैं? यद्यपि उन सबमें समझ की कमी नहीं है, तथापि वे संसार की स्थिति (जन्म-मरण की परम्परा) बनाये रखने वाले भगवती महामाया के प्रभाव द्वारा ममतामय भँवर से युक्त मोह के गहरे गर्त में गिराये जाते हैं। इसलिये इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये।जगदीश्वर भगवान विष्णु की योगनिद्रारूपा जो भगवाती महामाया हैं, उन्हीं से यह जगत मोहित हो रहा है। वे भगवती महामाया देवी ज्ञानियों के भी चित्त को बलपूर्वक खींचकर मोह में डाल देती हैं। वे ही इस संपूर्ण चराचर जगत की सृष्टि करती हैं तथा वे ही प्रसन्न होने पर मनुष्यों को मुक्ति के लिये वरदान देती हैं। वे ही पराविद्या, संसार-बंधन और मोक्ष की हेतुभूता सनातनी देवी तथा संपूर्ण ईश्वरों की भी अधीश्वरी हैं ॥५१-५८॥

राजोवाच॥५९॥
भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्॥६०॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च* किं द्विज।
यत्प्रभावा* च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा॥६१॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर॥६२॥

राजा ने पूछा – ॥५९॥ भगवन ! जिन्हें आप महामाया कहते हैं, वे देवी कौन हैं? ब्रह्मन् ! उनका अविर्भाव कैसे हुआ? तथा उनके चरित्र कौन-कौन हैं ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ महर्षे, उन देवी का जैसा प्रभाव हो, जैसा स्वरूप हो और जिस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ हो, वह सब मैं आपके मुख से सुनना चाहता हूँ ॥६०-६२॥

ऋषिरुवाच॥६३॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥६४॥

तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥६५॥

उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।

योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते॥६६॥

आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ॥६७॥

विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः॥६८॥

दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम्।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः॥६९॥

विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम्*।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्॥७०॥
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः॥७१॥

ऋषि बोले – ॥६३॥ राजन् ! वास्तव मे तो वे देवी नित्यस्वरूपा ही हैं।
सम्पूर्ण जगत् उन्हीं का रूप है तथा उन्होंने समस्त विश्व को व्याप्त कर रखा है, तथापि उनका प्राकटय अनेक प्रकार से होता है। वह मुझ से सुनो।यद्यपि वे नित्य और अजन्मा हैं, तथापि जब देवताओं को कार्य सिद्ध करने के लिये प्रकट होती हैं, उस समय लोक में उत्पन्न हुई कहलाती हैं। कल्प (प्रलय) के अन्त में सम्पूर्ण जगत् जल में डूबा हुआ था। सबके प्रभु भगवान विष्णु शेषनाग की शय्या बिछाकर योगनिद्रा का आश्रय ले शयन कर रहे थे। उस समय उनके कानों की मैल से दो भयंकर असुर उत्पन्न हुए, जो मुध और कैटभ के नाम से विख्यात थे। वे दोनों ब्रह्मा जी का वध करने को तैयार हो गये। प्रजापति ब्रह्माजी ने जब उन दोनों भयानक असुरों को अपने पास आया और भगवान को सोया हुआ देखा तो सोचा की मुझे कौन बचाएगा।एकाग्रचित्त होकर ब्रम्हाजी भगवान विष्णु को जगाने के लिए उनके नेत्रों में निवास करने वाली योगनिद्रा की स्तुति करने लगे, जो विष्णु भगवान को सुला रही थी। जो इस विश्व की अधीश्वरी, जगत को धारण करने वाली, संसार का पालन और संहार करने वाली तथा तेज:स्वरूप भगवान विष्णु की अनुपम शक्ति हैं, उन्हीं भगवती निद्रादेवी की भगवान ब्रह्मा स्तुति करने लगे ॥६४-७१॥

ब्रह्मोवाच॥७२॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधां त्वं हि वषट्कारःस्वरात्मिका॥७३॥
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः॥७४॥

त्वमेव संध्या* सावित्री त्वं देवि जननी परा।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्॥७५॥

त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने॥७६॥

तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः॥७७॥

महामोहा च भवती महादेवी महासुरी*।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी॥७८॥

कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा॥७९॥

लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा॥८०॥

शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा।
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी॥८१॥

परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी।
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके॥८२॥

तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा*।
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति* यो जगत्॥८३॥

सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च॥८४॥

कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता॥८५॥

मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ।
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु॥८६॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ॥८७॥

ब्रह्मा जी ने कहा – ॥७२॥ देवि ! तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तम्ही वषट्कार हो। स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं जीवनदायिनी सुधा हो। नित्य अक्षर प्रणव में अकार, उकार, मकार – इन तीन मात्राओं के रूप में तुम्हीं स्थित हो तथा इन तीन मात्राओं के अतिरिक्त जो बिन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका विशेष रूप से उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो। देवि ! तुम्हीं संध्या, सावित्री तथा परम जननी हो। देवि! तुम्हीं इस विश्व ब्रह्माण्ड को धारण करती हो। तुम से ही इस जगत की सृष्टि होती है। तुम्हीं से इसका पालन होता है और सदा तुम्ही कल्प के अंत में सबको अपना ग्रास बना लेती हो। जगन्मयी देवि! इस जगत की उत्पत्ति के समय तुम सृष्टिरूपा हो, पालन-काल में स्थितिरूपा हो तथा कल्पान्त के समय संहाररूप धारण करने वाली हो। तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोह रूपा, महादेवी और महासुरी हो।
तुम्हीं तीनों गुणों को उत्पन्न करने वाली सबकी प्रकृति हो। भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तुम्हीं हो। तुम्हीं श्री, तुम्हीं ईश्वरी, तुम्हीं ह्रीं और तुम्हीं बोधस्वरूपा बुद्धि हो। लज्जा , पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा भी तुम्हीं हो। तुम खड्गधारिणी, शूलधारिणी, घोररूपा तथा गदा, चक्र, शंख और धनुष धारण करने वाली हो। बाण, भुशुण्डी और परिघ – ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं। तुम सौम्य और सौम्यतर हो – इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्याधिक सुन्दरी हो। पर और अपर – सबसे परे रहने वाली परमेश्वरी तुम्हीं हो। सर्वस्वरूपे देवि! कहीं भी सत्-असत् रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं और उन सबकी जो शक्ति है, वह तुम्हीं हो। ऐसी अवस्था में तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है। जो इस जगत की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन भगवान को भी जब तुमने निद्रा के अधीन कर दिया है तो तुम्हारी स्तुति करने में यहाँ कौन समर्थ हो सकता है। मुझको, भगवान शंकर को तथा भगवान विष्णु को भी तुमने ही शरीर धारण कराया है। अत: तुम्हारी स्तुति करने की शक्ति किसमें है। देवि! तुम तो अपने इन उदार प्रभावों से ही प्रशंसित हो। ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मधु और कैटभ हैं, इनको मोह में डाल दो और जगदीश्वर भगवान विष्णु को शीघ्र ही जगा दो। साथ ही इनके भीतर इन दोनों महान असुरों को मार डालने की बुद्धि उत्पन्न कर दो ॥७३-८७॥

ऋषिरुवाच॥८८॥

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा॥८९॥

विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः॥९०॥

निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः॥९१॥

एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ।
मधुकैटभो दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ॥९२॥

क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं* ब्रह्माणं जनितोद्यमौ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः॥९३॥

पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ॥९४॥

उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम्॥९५॥

ऋषि कहते हैं – ॥८८॥ राजन्! जब ब्रह्मा जी ने वहाँ मधु और कैटभ को मारने के उद्देश्य से भगवान विष्णु को जगाने के लिए तमोगुण की अधिष्ठात्री देवी योगनिद्रा की इस प्रकार स्तुति की, तब वे भगवान के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्ष स्थल से निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी की दृष्टि के समक्ष खडी हो गयी। योगनिद्रा से मुक्त होने पर जगत के स्वामी भगवान जनार्दन उस एकार्णव के जल में शेषनाग की शय्या से जाग उठे। फिर उन्होंने उन दोनों असुरों को देखा। वे दुरात्मा मधु और कैटभ अत्यन्त बलवान तथा परक्रमी थे और क्रोध से ऑखें लाल किये ब्रह्माजी को खा जाने के लिये उद्योग कर रहे थे। तब भगवान श्री हरि ने उठकर उन दोनों के साथ पाँच हजार वर्षों तक केवल बाहु युद्ध किया। वे दोनों भी अत्यन्त बल के कारण उन्मत्त हो रहे थे। तब महामाया ने उन्हें मोह में डाल दिया। और वे भगवान विष्णु से कहने लगे – हम तुम्हारी वीरता से संतुष्ट हैं। तुम हम लोगों से कोई वर माँगो ॥८९-९५॥

श्रीभगवानुवाच॥९६॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि॥९७॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम*॥९८॥

श्री भगवान् बोले – ॥९६॥ यदि तुम दोनों मुझ पर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथ से मारे जाओ। बस, इतना सा ही मैंने वर माँगा है। यहाँ दूसरे किसी वर से क्या लेना है ॥९७-९८॥

ऋषिरुवाच॥९९॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत्॥१००॥
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः*।

आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता॥१०१॥

ऋषि कहते हैं – ॥९९॥ इस प्रकार धोखे में आ जाने पर जब उन्होंने संपूर्ण जगत में जल-ही-जल देखा, तब कमलनयन भगवान से कहा – जहाँ पृथ्वी जल में डूबी हुई न हो जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो ॥१००-१०१॥

ऋषिरुवाच॥१०२॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता।
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः॥१०३॥

एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम्।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः श्रृणु वदामि ते॥ ऐं ॐ॥१०४॥

ऋषि कहते हैं- ॥१०२॥ तब तथास्तु कहकर शंख, चक्र और गदा धारण करने वाले भगवान ने उन दोनों के मस्तक अपनी जाँघ पर रखकर चक्रसे काट डाले।इस प्रकार ये देवी महामाया ब्रह्माजी की स्तुति करने पर स्वयं प्रकट हुई थीं। अब पुनः तुम से उनके प्रभाव का वर्णन करता हूँ, सो सुनो ॥१०३-१०४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमहात्म्यमें
'मधु-कैटभ-वध' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥१॥

उवाच १४, अर्धश्लोकाः २४, श्लोकाः ६६,
एवमादितः॥१०४॥

सत्यम आनंदजी (गायक/संगीतकार)
Singer/Composer - Satyam आनंदजी

https://www.bhajanganga.com/bhajan/lyrics/id/15499/title/shri-durga-saptashati-chapter

अपने Android मोबाइल पर BhajanGanga App डाउनलोड करें और भजनों का आनंद ले |